ॐ

त्रैलोक्यतिलकव्रतोद्यापनम्

त्रैलोक्यतिलक-रोटतीज व्रतकथा सहित।

रचयिताः—

पन्नालालो जैनः साहित्याचार्यः सागरवास्तव्यः

प्रकाशकः—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बर जैन पुस्तकालय,

कापड़ियाभवन—सूरत।

प्रथमावृत्ति] वीर सं० २४६२ [प्रति ७००

"दिगम्बर जैन" पत्रके ३६ वें वर्षके ग्राहकोंको
स्व० सौ० सविताबाई (ध० प० श्री० मूलचन्द
किसनदासजी कापड़िया)के स्मरणार्थ भेंट।

मूल्य—पांच आना।

सौ० सविताबाई मूलचन्द कापड़िया—स्मारक ग्रंथमाला नं० १०।

हमारी धर्मपत्नी सौ० सविताबाई वीर सं० २४५६ में सिर्फ २२ वर्षकी अल्पायुमें स्वर्गवासिनी हुई थी उस समय हमने उनके स्मरणार्थ २६१२) का दान किया था, उसमेंसे २०००) स्थायी शास्त्रदानके लिये निकाले थे जिसकी आयसे इस ग्रन्थमालाका उदय १२ वर्ष हुए हुआ था जिसके आजतक निम्नलिखित ९ ग्रन्थ प्रकट होकर "दिगम्बर जैन" या "जैन महिलादर्श" के ग्राहकोंको भेटमें दिये जाचुके हैं—

१-ऐतिहासिक स्त्रियाँ—(ब्र० पं० चन्दाबाईजी कृत) ॥)
२-संक्षिप्त जैन इतिहास—(द्वि० भाग प्र० खण्ड) १॥।)
३-पंचरत्न—(बा० कामताप्रसादजी कृत) ।=)
४-संक्षिप्त जैन इतिहास—(द्वि० भाग द्वि० खण्ड) १=)
५-वीर पाठावलि—(बा० कामताप्रसादजी कृत) ॥=)
६-जैनत्व—(रमणिक वि० शाह वकील कृत) ।=)
७-संक्षिप्त जैन इतिहास—(भाग ३ खण्ड १) १)
८-प्राचीन जैन इतिहास—तीसरा भाग (मूलचन्द वत्सलकृत) ॥।)
९-संक्षिप्त जैन इतिहास—भाग ३ खण्ड ३ ॥।)

१०–त्रैलोक्यतिलक व्रतोद्यापनम् (कथा सहित)—
पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य कृत–

–यह १० वां ग्रन्थ प्रकट किया जाता है और 'दिगम्बर जैन' पत्रके ३६ वे वर्षके ग्राहकोंको भेट दिया जाता है तथा जो 'दिगम्बर जैन' के ग्राहक नहीं हैं उनके लाभार्थ इस पुस्तककी कुछ प्रतियां विक्रयार्थ भी निकाली गई हैं।

श्री त्रैलोक्यतिलक व्रतके इस संस्कृत उद्यापनकी रचना श्री० पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर निवासीने की है, साथमें इस त्रैलोक्य तीज–रोट तीज व्रतकी कथा भी आपने इसमें दे दी है, अतः इस व्रतको करनेवाले तथा इस व्रतका माहात्म्य जाननेके लिये यह उद्यापन बहुत उपयोगी बन गया है। आपने निःस्वार्थ वृत्तिसे इस ग्रन्थकी रचना कर दी है इसलिये दि० जैन समाज आपका चिरकाल तक आभारी रहेगा।

सूरत वीर सं० २४६९
वैशाख वदी ३
ता. २३–४–४३

निवेदक—
मूलचन्द किसनदास कापडिया,
—प्रकाशक।

जैन विजय प्रेस-सूरत।

शुद्धिपत्रकम् ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
आद्य नि०	१८	महाशयोंको	महाशयोंकी
विधि ५	३	अष्टदल	अष्टदलकमल
५	५	परमेष्ठिका	परमेष्ठीका
१	८	विभाषित	विभासित
३	८	वन्दे युक्तं	वन्दे मुक्तं
५	१५	-विविधै-	-विविधै-
७	७	दूराभूता	दूरीभूता
७	१०	जिन रिपुकदनात्	जितरिपुकदनम्
१०	८	वांशित	वांरित
१८	३	जिनचैत्यालया	जिनचैत्यालयाः
२०	१२	जिनालया	जिनालयाः
२२	१९	द्वौ चैवपञ्चाशत्संख्यया तान्	युग्माक्षसंख्यासहिता-न्मुदा तान्
२४	६	भास्वज्जोतिः	भास्वज्ज्योतिः
२५	८	महन्ति	महान्ति
२६	१७	त्रिकालं	त्रिककालं
२७	४	कुर्यासुः मङ्गलं	कुर्यासुर्मङ्गलं
३१	४	ते	ये
३१	५	शतानि सप्त	शतं हि सप्त
३२	२१	पञ्चाशीतिलक्षकम्	पञ्चाशीतिकलक्षकम्
३६	७	मालिनी छन्दः	शालिनी छन्दः

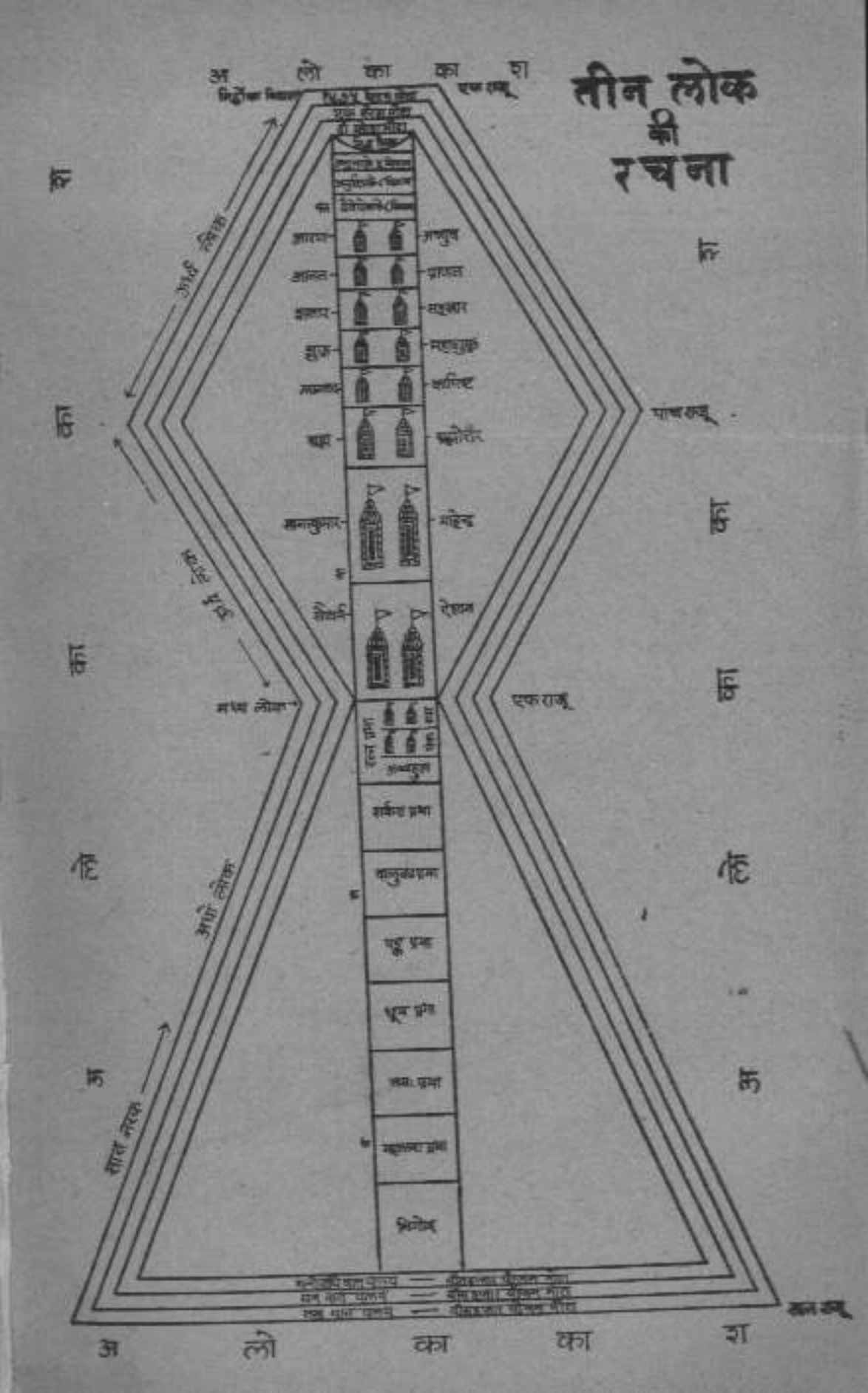

तीन लोक की रचना

अ लो का का श
एक राजू
ऊर्ध्व लोक
अच्युत
प्राणत
सहस्रार
महाशुक्र
कापिष्ट
शुक्र
ब्रह्म
ब्रह्मोत्तर
सनत्कुमार
माहेन्द्र
सौधर्म
ऐशान
पांच राजू
मध्य लोक
एक राजू
अधो लोक
शर्करा प्रभा
बालुका प्रभा
पंक प्रभा
धूम प्रभा
तमः प्रभा
महातमः प्रभा
निगोद
सात नरक
सात राजू
अ लो का का श

आद्य निवेदन ।

गृहस्थका जीवन अनेक सावद्य कार्योंसे पूर्ण रहता है इसलिये उसे तज्जनित पापकर्मोंका आस्रव कम करने और शुभ कर्मोंका आस्रव बढ़ानेके लिये अनेक प्रकारके व्रत, अनुष्ठान आदि करते रहना चाहिये। व्रत, अनुष्ठान आदिके करनेसे शुभोपभोग तो होता ही है परन्तु क्रम-क्रमसे विषय और कषायोंके क्षीण होजानेसे शुद्धोपयोग प्राप्त होनेका भी अवसर मिल जाता है।

जैन शास्त्रोंमें अनेक प्रकारके व्रतोंका वर्णन मिलता है, उनमेंसे एक व्रत—'त्रैलोक्य तिलक व्रत' अथवा 'त्रैलोक्य तीज' व्रत भी है। मारवाड़में इस व्रतको 'रोट तीज' का व्रत भी कहते हैं। यह भादों सुदी ३ को किया जाता है। इसमें तीन लोकके जिनालय अथवा तीन काल सम्बन्धी चौबीस तीर्थंकरोंकी विशेष पूजा करनेका विधान है। व्रतके दिन उपवास करना चाहिये और धर्मध्यानमें समय बिताना चाहिये। यह व्रत लगातार तीन वर्ष तक किया जाता है। उसके बाद उत्साहपूर्वक उद्यापन करना चाहिये। उद्यापन शब्दका अर्थ है अपने भावोंको ऊपर ले जाना अर्थात अपने परिणामोंकी विशुद्धि उत्तरोत्तर बढ़ाते रहना (उद्=ऊपर, यापन—ले जाना) विधिपूर्वक उद्यापन करनेसे व्रत करनेवाले महाशयोंकी भाव शुद्धि तो होती ही है परन्तु अन्य दर्शक महाशयोंको भी उस व्रतके करनेकी ओर रुचि बढ़ती है और

जिससे धार्मिक आचार-विचारोंकी वृद्धि होती रहती है, इसलिये व्रत करनेवाले महाशयोंको शक्ति रहते हुए अवश्य ही विधिपूर्वक उद्यापन कराना चाहिये। जिनकी शक्ति न हो वे व्रतको द्विगुणित भी कर सकते हैं।

अभी विद्वान् लोग इस व्रतके उद्यापनके लिये प्रायः त्रैलोक्य-तिलक विधान करवाते हैं जिसमें बहुत समय लगता है और वह श्रीमानों द्वारा ही कराया जा सकता है, साधारण पुरुष उतना समय और खर्च करनेकी योग्यता नहीं रखते, इसलिये मेरा ख्याल इस ओर गया कि यदि अष्टाह्निका आदि व्रतोंके उद्यापनके समान इस व्रतके उद्यापनका भी कोई छोटा पाठ हो तो उससे सभी वर्गके पुरुष लाभ उठा सकते हैं। ऐसे पाठका अन्वेषण करनेके लिये हमने कई विद्वानोंसे मौखिक चर्चा की और कितने ही विद्वानोंको पत्र द्वारा भी समाचार दिये, परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ।

अन्तमें हमने स्थानीय विद्वन्मण्डलीके साथ परामर्श कर एक नवीन पाठ रचनेका विचार किया जो दो चार दिनमें ही पूर्ण होगया। इस पाठमें तीनलोक संबंधी अकृत्रिम चैत्यालयोंकी समुच्चय और पृथक् पृथक् पूजाएं दी गई हैं। संक्षेपमें अकृत्रिम चत्यालयोंकी गणना वगैरहका भी परिचय कराया गया है। पाठ नवीन अवश्य है परन्तु हमने ज्ञात-भावसे उसमें किसी भी ऐसी बातका वर्णन नहीं किया है जो जैनागमसे विरुद्ध जाती हो और उसके कारण इस पाठकी प्रामाणिकतामें कोई सन्देह पैदा हो। फिर भी हमारे सहृदय विद्वान् उसका परीक्षण

कर हमें सूचित करनेकी कृपा करेंगे जिससे आगेकी आवृत्तियोंमें उचित संशोधन किया जा सके।

संस्कृत प्रेमी विद्वानोंकी सम्मति थी कि पाठकी रचना संस्कृत भाषामें ही की जावे, क्योंकि उससे व्रत तथा उसके उद्यापनकी महत्ता प्रकट होने लगती है। इसलिये मैंने संस्कृत भाषामें ही इसकी रचना की है, परन्तु फिर भी भाषाकी सरलता पर बहुत ध्यान दिया है। छन्द भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध ही रखे हैं, इसलिये संस्कृतके साधारण जानकार भी इससे यथेष्ट लाभ उठा सकेंगे। उद्यापनकी विधि भी बीच बीचमें हिन्दीमें ही दी है जिससे 'क्या पढ़कर क्या करना चाहिये' यह समझनेमें सबको सहूलियत होगी।

पाठकी रचना पूर्ण होनेपर मैंने प्रकाशनके लिये श्रीमान् मूलचन्द किसनदासजी कापड़िया सूरतको लिखा और उन्होंने प्रकाशित करना सहर्ष स्वीकृत कर लिया जिससे कुल मेटर सूरत भेज दिया गया। अब यह पाठ उन्हींके कार्यालयसे प्रकाशित हो रहा है। इस कार्यके लिये मैं उन्हें धन्यवादके सिवाय और क्या दे सकता हूं?

आशा है विद्वान् लोग इससे यथेष्ट लाभ उठाकर हमारे परिश्रमको सफल करेंगे।

'वसन्तकुटीर'
सागर
दीपावलि-वीर सं० २४६१

विनीतः—
पन्नालाल जैन।

त्रैलोक्य तिलक व्रतके-
-उद्यापनकी विधि।

जिस किसीको अपने व्रतका उद्यापन करना हो वह विधिपूर्वक शक्ति अनुसार सुन्दर सामग्री एकत्रित करे और साधर्मी जनोंको द्रव्य ले जानेके लिये अपने घरपर आमन्त्रित करे। साधर्मी जन भी गाजे-बाजेके साथ उद्यापन करानेवालेके घर जावें और वहां भजन आदि गावें। विधि करानेवाला आचार्य घरकी किसी पवित्र जगहमें चावलोंका स्वस्तिक बनाकर उनपर तीन घट रखे। घट रखनेके पहले उन्हें प्रत्येक घटमें सवा सवा रुपया या फल, पुष्प आदि डालकर सूत्र नारियल और पंचरंगा सूतसे वेष्टित कर लेना चाहिये। उनपर आम या अशोकके हरित पत्र तथा दूवा और पुष्पमाला वगैरह मांगलिक पदार्थ भी लगा देना चाहिये। घटोंके पास ही एक घृतका चौमुखी दीपक जलावे और फिर मङ्गलाष्टक या मंगल पञ्चक पढ़ता हुआ उन घटोंपर पुष्प डालता जावे। यह सब क्रिया होचुकनेपर साधर्मी जन द्रव्य लेकर गाजे बाजेके साथ मन्दिरजीमें जावें, उन्हींके साथ इकट्ठी हुई स्त्रियां अथवा उद्यापन करानेवाले महाशय उन तीन घटोंको भी मन्दिरजीमें लेजावे। मन्दिरजीमें वेदिकाके सामने अथवा किसी विस्तृत स्थानमें चंदोवा बांधकर तख्तपर मुंगी अथवा शुद्ध रंगमें रंगे हुए चावलोंसे तीनलोकका मांडना बनावें। (मांडना पहलेसे बना लेना चाहिये) तीनों लोकोंके स्थान

पर जिनबिम्बकी स्थापना करे। मांडनेके पास ही एक अष्टदल कमल बनावें, उसके बीचमें ॐ लिखें। चैत्यालयोंकी पूजा प्रारम्भ करनेके पहले अष्टदल कमलकी पूजा करे, यह अष्टदल अष्टकर्म रहित सिद्धपरमेष्ठीके अष्ट गुणोंके परिचायक हैं। कार्यकी निर्विघ्नता समाप्तिके लिये सिद्ध परमेष्ठिका प्रथम पूजन करना उचित ही है। मांडलेपर जहांसे जिस लोककी रचना शुरू होती है वहां चांवलोंसे स्वस्तिक बनाकर उसपर घरसे लाये हुये तीन कलश रख देवे। जिनबिम्बके समीप ही एक पुरुषाकार तीन लोकका यंत्र बनाकर विराजमान करना चाहिये। अनन्तर सब तैयारी होचुकने पर अभिषेकपूर्वक पूजा प्रारम्भ करना चाहिये।

विशेष—

जिन्होंने व्रतके दिनोंमें त्रिकाल सम्बन्धी तीन चौबीसीकी आराधना-पूजा की है वे उद्यापनके समय ७२ कोठोंका सुन्दर मण्डल बनावे, और मण्डलके मध्यमें अष्टदल कमलकी रचना करे। अनन्तर जिनबिम्बकी स्थापना कर अभिषेकपूर्वक तीन चौबीसी (तीनकाल सम्बन्धी चौवीस चौवीस) तीर्थंकरोंकी पूजा करे।

उद्यापनकी समाप्तिके समय यथाशक्ति चतुर्विध दान करना चाहिये। प्रतिष्ठाचार्य उपस्थित जनताको व्रतका माहात्म्य तथा उसकी कथा आदि बतलावे।

—पन्नालाल जैन।

॥ ॐ ॥

त्रैलोक्य-तिलक व्रत कथा ।*

येन सद्ध्यानशस्त्रेण छिन्नं कर्मकदम्बकम् ।
त्रैलोक्यभ्रमणातीतं वन्दे तं सिद्धसन्मतिम् ॥

असंख्यात द्वीप समुद्रोंसे भरे हुए मध्यलोकमें सबसे पहला **जम्बूद्वीप** नामका महाद्वीप है। यह एक लाख योजन विस्तारवाला है और चारों ओरसे लवणसमुद्र द्वारा वेष्टित है। इसी जम्बूद्वीपके दक्षिणमें एक भरत नामका क्षेत्र है। उसके बीचमें पूर्वसे पश्चिम तक लंबा विजयार्ध नामका पर्वत पड़ा हुआ है तथा हिमवत् पर्वतसे निकली हुई गंगा और सिन्धु महानदियां भी इसी क्षेत्रमें बहती हैं, इस कारणसे इस क्षेत्रके छह खण्ड होजाते हैं। इन छह खण्डोंमें मध्यका आर्य-खण्ड कहलाता है और शेषके पांच खण्ड म्लेच्छ खण्ड कहलाते हैं। तीर्थंकर आदि महापुरुष आर्यखण्ड हीमें उत्पन्न होते हैं। इस आर्य-खण्डमें अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग आदि अनेक अच्छे अच्छे देश हैं, उन्हीं देशोंमें एक कुरुजांगल नामका देश भी है जो सदैव ही हरा भरा रहता है। उसी देशमें एक **हस्तिनागपुर** नामका नगर है, जो अनेक तीर्थंकरोंके गर्भ जन्म और तप कल्याणक होनेसे अतिशय पवित्र है।

किसी समय वहांपर **कामंदुक** राजा राज्य करते थे। राजा कामंदुक बहुत नीतिवान और बलवान् थे। इनकी रानीका नाम

* इस व्रतको '**त्रिलोक तीज व्रत**' और '**रोट तीज व्रत**' भी कहते हैं।

कमललोचना था कमललोचना यथार्थमें कमललोचना ही थी—उसके नेत्र कमलोंके समान अतिशय सुन्दर थे। राजा और रानी धर्मसेवन करते हुए आनन्दसे समय व्यतीत करते थे। समय पाकर उनके विशाखदत्त नामका पुत्र हुआ। राजा कामंदुकके एक वरदत्त नामका मंत्री था। मंत्रीकी पत्नीका नाम विशालाक्षी था। उन दोनोंसे एक विजयसुन्दरी नामकी पुत्री हुई जो बहुत ही रूपवती थी। राजकुमार विशाखदत्तने तरुण होनेपर उसी विजयसुन्दरीके साथ विवाह किया था।

कितने ही दिन बाद राजा कामन्दुककी मृत्यु होगई, जिससे समस्त राज परिवार और प्रजाजन बहुत ही दुखी हुए, परन्तु मात्र शोक करनेसे ही तो गई हुई वस्तुकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

राजकुमार विशाखदत्तने राज्यका भार ग्रहण किया और नीति-पूर्वक प्रजाका पालन करना शुरू कर दिया, परन्तु पिताके वियोगसे वह हमेशा खेदखिन्न रहा करता था। एक दिन वह उदासचित्त बैठा हुआ था कि वहां विहार करते हुए ज्ञानसागर नामके मुनिराज आये। राजाने उठकर उन्हें नमस्कार किया और उच्चासनपर बैठाकर उनकी बड़ी स्तुति की। मुनिराजने धर्मवृद्धि रूप आशीर्वाद देकर राजा विशाखदत्तको इस रीतिसे धर्मोपदेश दिया कि जिससे उसका समस्त शोक नष्ट होगया। उपदेश देकर मुनिराज यथेष्ट स्थानपर विहार कर गये और राजा न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करने लगा।

किसी समय उस नगरीमें अनेक अर्यिकाओंके साथ विहार करती

हुई संयमभूषण नामकी आर्यिका पधारीं। वे समस्त आर्यिकाओंकी गणिनी अर्थात् स्वामिनी थीं। नगरीके समस्त स्त्री—पुरुष उनके दर्शन करनेके लिये गये। रानी विजयसुन्दरी भी साजबाजके साथ आर्यिकाके दर्शन करने गई। आर्यिकाने सबको धर्मोपदेश दिया। उपदेश हो चुकनेके बाद रानीने विनय सहित पूछा कि—हे स्वामिनी! मेरे योग्य कोई ऐसा व्रत बताइये जिसके करनेसे मेरा जन्म सफल हो और इस निन्दनीय स्त्री पर्यायसे छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त कर सकूं। आर्यिकाने रानीको निकटभव्य जानकर उसे **त्रैलोक्य तिलक** (त्रिलोक तीज) **व्रत** करनेका आदेश दिया। रानीके पूछने पर आर्यिकाने उसकी नीचे लिखे अनुसार विधि बतलाई—

यह व्रत भाद्र मासके शुक्लपक्षकी तृतीयाके दिन किया जाता है। व्रतके दिन उपवास करना चाहिये और हरप्रकारके आरम्भ आदिका त्यागकर प्रमाद रहित हो धर्मध्यान करना चाहिये। मन्दिरजीमें तीन लोककी रचना कर उसमें अकृत्रिम चैत्यालयोंकी स्थापना कर विधिपूर्वक पूजा करना चाहिये। और तीनों काल '**ॐ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्ध्य-कृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नमः।**' इस मंत्रका जाप करना चाहिये।*

---

* कहीं कहींपर ऐसा भी विधान है कि भूत भविष्यत् और वर्तमान काल सम्बन्धी तीन चौवीसीका मांडना बनाकर तीन चौवीसीकी पूजा करना चाहिये। और '**ॐ ह्रीं त्रिकालसम्बन्धीत्रिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमः**' इस मंत्रका जाप करना चाहिये। परन्तु तत्व-दृष्टिसे विचार करनेपर दोनोंका प्रयोजन एक ही मालूम होता है। क्योंकि यह सब शुभोपयोगकी वृद्धि तथा चित्तकी चंचलताके रोकनेके साधन मात्र हैं।

रातका समय भी धर्मध्यानमें ही बिताना चाहिये। इस प्रकार यह व्रत तीन वर्ष तक करना चाहिये। उसके बाद उत्साहपूर्वक शक्तिके अनुसार व्रतका उद्यापन करना चाहिये। यदि उद्यापन करनेकी सामर्थ्य न हो तो व्रतको दूना करना चाहिये। उद्यापनके समय हरप्रकारके तीन तीन उपकरण मंदिरजीमें भेट करे, शास्त्रदान दे, चतुर्विध संघको चार प्रकारका दान देवे और अपने भावोंकी विशुद्धि उत्तरोत्तर बढ़ानेका प्रयत्न करे। विधिपूर्वक व्रतका पालन करनेसे शीघ्र ही यथेष्ट फलकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार विधि सुनकर रानीने उक्त व्रतको आर्यिका तथा अन्य समस्त संघकी साक्षीपूर्वक ग्रहण किया और यत्न सहित उसका पालन किया। आयुके अन्तमें समाधिमरण करके अच्युत नामके १६ वें स्वर्गमें देव हुवे। व्रतके प्रभावसे उसका स्त्रीलिङ्ग छिद गया। वहां उसने मनवांछित अनेक सुख भोगे और अकृत्रिम चैत्यालयोंके साक्षात् दर्शन तथा धर्मध्यान करते हुये समय बिताया।

आयु पूर्ण होनेपर वह मगधदेशके कंचनपुर नगरमें राजा **पिंगल** और राणी **कमललोचनाके सुमंगल** नामका पुत्र हुआ। एक दिन वह अपने इष्ट मित्रोंके साथ वनक्रीडाके लिये गया था कि वहां उसकी दृष्टि एक दिगम्बर मुनिराज पर पड़ी। मुनिराजके दर्शन करते ही राजपुत्र सुमंगलके हृदयमें भारी ममता उत्पन्न होगई। वह मुनिराजको नमस्कार कर विनय सहित उनके पास ही बैठ गया और पूछने लगा कि हे ऋषिराज! आपके दर्शनकर मेरे हृदयमें भारी ममता उत्पन्न हो

रही है सो इसका क्या कारण है ? राजपुत्रके वचन सुनकर मुनिराज कहने लगे कि हे वत्स ! तू इस भवसे तीसरे भवमें हस्तिनागपुरके राजा **विशांखदत्तकी विजयसुन्दरी** नामकी रानी थी, उस समय मैं **संयम-भूषण** नामकी आर्यिका थी. मेरे उपदेशसे तूने त्रैलोक्य तिलक व्रत (त्रिलोक तीजव्रत) ग्रहण किया था और उसके प्रभावसे तू सोलहवें स्वर्गमें देव हुई। वहांसे चयकर यहां राजा सुपिंगलकी कमल-लोचना रानीसे सुमंगल नामका राजपुत्र हुआ है और मेरा जीव भी संयमभूषण आर्जिकाके बाद स्वर्गमें देव हुआ तथा वहांसे चयकर यहां मनुष्य पर्यायमें उत्पन्न हुआ। संसारको अनित्य समझकर मैंने जिनदीक्षा धारण करली है। पूर्वभवके स्नेहके कारण ही मुझे देखकर तेरे हृदयमें ममता उत्पन्न हुई है। यह जीव संसारमें इसीप्रकार घूमता फिरता है इसलिये किसीसे हर्ष विषाद नहीं करना चाहिये।

मुनिराजके वचन सुनकर सुमंगलके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हो-आया जिससे उसने उसी समय जिनदीक्षा धारण करली और कठिन तपस्या कर केवलज्ञान प्राप्त किया। सुमंगल केवलीने आर्य देशोंमें विहार कर धर्मका उपदेश दिया और फिर अष्टकर्मोंको नष्ट कर मोक्ष-पद प्राप्त किया।

इसप्रकार रानी विजयसुन्दरीने त्रैलोक्य तिलक व्रतका पालन कर स्वर्ग मोक्षके सुख प्राप्त किये। यदि श्रद्धा सहित अन्य भव्य भी इसे धारण करें, तो इच्छानुसार फल प्राप्त कर सकते हैं।

श्रीवीतरागाय नमः

श्री० पं० पन्नालालजी जैन साहित्याचार्य विरचित—

त्रैलोक्यतिलक व्रतोद्यापनम्।

मङ्गलपञ्चकम्।

हिन्दी गीतिकाछन्दः।

गुणरत्नभूषा विगतदूषाः सौम्यभावनिशाकराः।
सद्बोधभानुविभाविभाषितदिक्चया विदुषांवराः॥
निःसीमसौख्यसमूहमण्डितयोगखण्डितरतिव्रजाः।
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते श्री वीरनाथजिनेश्वराः॥ १॥
सद्ध्यानतीक्ष्णकृपाणधारानिहतकर्मकदम्बका।
देवेन्द्रवृन्दनरेन्द्रवन्द्याः प्राप्तसुखनिकुरम्बकाः॥
योगीन्द्रयोगनिरूपणीयाः प्राप्तबोधकलापकाः।
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते सिद्धाः सदा सुखदायकाः॥ २॥
आचारपञ्चकचरणचारणचञ्चवः समताधराः।
नानातपोभरहेतिहापितकर्मणः सुखताकराः॥
गुप्तित्रयीपरिशीलनादिविभूषिता वदतांवराः।
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते श्री सूरयोऽर्जितशंभराः॥ ३॥
द्रव्यार्थभेदविभिन्नश्रुतभरपूर्णतत्त्वनिभालिनो
दुर्योगयोगनिरोधदक्षाः सकलवरगुणजालिनः।

कर्तव्यदेशनतत्परा विज्ञानगौरवशालिनः
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते गुरुदेवदीधितिमालिनः ॥ ४ ॥
संयमसमित्यावश्यकापरिहाणिगुप्तिविभूषिताः
पञ्चाक्षदान्तिसमुद्यताः समृतासुधापरिभूषिताः ।
भूपृष्ठविष्टरशायिनो विविधर्द्धिवृन्दविभूषिताः
कुर्वन्तु मङ्गलमत्र ते मुनयः सदा शमभूषिताः ॥ ५ ॥

(यह मङ्गलपञ्चक पढ़ते समय मण्डलपर पुष्पाञ्जलि क्षेपण करना चाहिये)

मंगलपञ्चक पढ़ चुकनेके बाद जिनेन्द्रदेव तथा त्रैलोक्य तिलक यन्त्रका अभिषेक करे ।

(अभिषेकके बाद ' ॐ जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु ' आदि पढ़कर नित्यपूजाके अनुसार स्थाप करना चाहिये । स्थापके बाद अष्टदल कमलपूजा करना चाहिये । बीचमें ॐ लिखकर उसकी आठों दिशाओंमें आठ पांखुरी बनाना चाहिये ।)

अष्टदल कमलपूजा ।

अनुष्टुप्छन्दः ।

अर्हदादिपदाकारमोंकारं बिन्दुसंयुतम् ।
कामदं मोक्षदं वन्दे कर्मारातिलयप्रदम् ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं मण्डलमध्यगताय पञ्चपरमेष्ठिरूपाय ॐकारार्घ्यं नि०

ज्ञानावरणसन्नाशलब्धानन्तसुबोधनम् ।
वन्दे सिद्धं स्वयंसिद्धं, कर्मशत्रुविशोधनम् ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं ज्ञानावरणकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घ्यं नि०

दृगावरणसंघातसंचितानन्तदर्शनम्
वन्दे सिद्धं जगत्कान्तं, भव्यजन्तुविहर्षणम् ॥ ८ ॥
ॐ ह्रीं दर्शनावरणकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घ्यं नि० ।

वेद्यबाधासमालब्धा-व्याबाधत्वमहागुणम् ।
वन्दे सिद्धं स्मराविद्धं क्षीणकर्मद्विषद्गणम् ॥ ९ ॥
ॐ ह्रीं वेद्यकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मोहभूपालभूपातलब्धसम्यक्त्वसन्मणिम् ।
वन्दे युक्तं गुणैर्युक्तं राजज्ञानदिवामणिम् ॥ १० ॥
ॐ ह्रीं मोहनीयकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घ्यं निर्वपामीति० ।

अवगाहनगुणोपेतमायुःकर्मविनाशनात् ।
वन्दे शुद्धं महाबुद्धं सिद्धं त्रैलोक्यदर्शनात् ॥ ११ ॥
ॐ ह्रीं आयुःकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घ्यं निर्वपामीति० ।

नामकर्मापहारेण सूक्ष्मत्वगुणशालिनम् ।
वन्दे मुक्तिमहीकान्तं लोकत्रयनिभालिनम् ॥ १२ ॥
ॐ ह्रीं नामकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घ्यं निर्वपामीति० ।

गोत्रगोत्रविदारेण प्राप्तागुरुलघुत्वकम् ।
वन्दे सिद्धिवधूस्वान्तमहामोहनकारकम् ॥ १३ ॥
ॐ ह्रीं गोत्रकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घ्यं निर्वपामीति० ।

अन्तरायविनाशेन प्राप्तानन्तमहाबलम् ।
वन्दे लोकशिखारूढं लोकातीतं सुनिश्चलम् ॥ १४ ॥
ॐ ह्रीं अन्तरायकर्मरहिताय सिद्धपरमेष्ठिनेऽर्घ्यं निर्वपामीति०
(इसके बाद नीचे लिखी हुई पूजाएं करना चाहिये ।)

अथ त्रैलोक्यसम्बन्ध्यकृत्रिम जिनचैत्यालयपूजा ।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः ।

श्रीमन्नाकिखगेन्द्रवन्दितभुवः प्रोत्तुङ्गशृङ्गोच्चयै
राजन्तो जिनराजबिम्बसहिता माणिक्यसंनिर्मिताः ।
नृत्यद्देवपुरन्ध्रिकारुणझुणन्मञ्जीरकध्वानिता
गायत्किन्नरकामिनीकलरवव्याप्ताखिलाशान्तराः ॥ १५ ॥
गन्धर्वोच्चलपाणिपीडितनदद्वादित्रसंशब्दिता–
श्चञ्चत्केतुकलापमण्डितशिरोभागाः प्रभाभास्वराः ।
त्रैलोक्ये जिनराजसद्मनिलया येऽकृत्रिमाः सन्ति तान्
वन्दे भक्तिभराभिनम्रशिरसा ध्यानैकतानो भवन् ॥ १६ ॥

अनुष्टुप् ।

आह्वानं स्थापनं तेषां विदधे सन्निधापनम् ।
त्रैलोक्यव्रतपूजायामत्र विघ्नप्रशान्तये ॥ १७ ॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्याकृत्रिमजिनचैत्यालयाः ! अत्रावतरतावतरत ।
ॐ ह्रीं त्रैलोक्याकृत्रिमजिनचैत्यालयाः ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ।
ॐ ह्रीं त्रैलोक्याकृत्रिम० ,, अत्र मम सन्निहिता भवत भवत ।

अष्टकम् ।

वंशस्थवृत्तम् ।

मुनीन्द्रचेतोऽमलतोयधारया,
स्वमाधुरीध्वस्तसुधासमूहया ।
त्रिलोकमध्ये लसितान्सदातना,
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥ जलम् ॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यकृत्रिमजिनालयेभ्यो जलं निर्वपामीति०

स्वगन्धलब्धीकृतकल्पशाखिज-
प्रसूनभारेण सु चन्दनेन हि ।
त्रिलोकमध्ये लसितान्सदातना-
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥ १९ ॥ चन्दनम् ॥

प्रभापराभूतसुमौक्तिकोच्चयै-
रखण्डशालयक्षतरम्यसंचयैः ।
त्रिलोकमध्ये लसितान्सदातना-
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥ २० ॥ अक्षतम् ॥

स्वसौरभाकृष्टमिलिन्दजालया-
मनोज्ञया मञ्जुलतान्तमालया ।
त्रिलोकमध्ये लसितान्सदातना-
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥ २१ ॥ पुष्पम् ॥

स्वकीयमाधुर्यसुधाभिभावकैः-
सिताज्यसारै विविधैर्निवेद्यकैः
त्रिलोकमध्ये लसितान्सदातना-
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥ २२ ॥ नैवेद्यम् ॥

प्रभासिताशेषदिगन्तरालया-
सुवर्णया मञ्जुलदीपमालया ।
त्रिलोकमध्ये लसितान्सदातना-
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥ २३ ॥ दीपम् ॥

स्वधूमविभ्राजितमेघसंचरै-
वैरागुरूद्भूतसुधूपसंभरैः ।
त्रिलोकमध्ये लसितान्सदातना -
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥ २४ ॥ धूपम् ॥
हृषीकसन्तोषभरप्रदायकै-
र्लवंगनारिंगमुखैर्फलौघकैः ।
त्रिलोकमध्ये लसितान्सदातना-
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥ २५ ॥ फलम् ॥
जलैः सुगन्धैश्चरुचारुदीपकैः
फलैः सुपुष्पाक्षतरम्यधूपकैः ।
त्रिलोकमध्ये लसितान्सदातना-
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥ २६ ॥ अर्घ्यम् ॥

जयमाला

स्रग्धराछन्दः ।

देवा यत्र त्रिकालं निखिलगुणयुता एत्य भक्त्या समन्तात-
पूजां कुर्वन्त्यपूर्वां वरविभवयुतां श्रीजिनेन्द्राधिपानाम् ।
कीर्तिं गायन्ति तेषां चरणसरसिजं भक्तितश्च स्तुवन्ति-
त्रैलोक्ये विद्यमाना जिनवरनिलया मोक्षदास्ते भवेयुः ॥ २७ ॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

चतुष्पदी (चौपाई १६ मात्राः ।)

ऊर्ध्वमध्यपातालस्थानं, रम्यरत्नवरराजिनिधानम् ।
अर्हद्भासितनिखिलसुदेहं, वन्देऽकृत्रिमजिनपतिगेहम् ॥२८॥

अष्टविभूतियुतो जिनदेवः, सुरपतिकृतपदसरसिजसेवः ।
राजति यत्र सदा जितमदनं, मया वन्द्यते तज्जिनसदनम् ॥२९॥
यत्र सुरा गायन्ति सुगानं, किन्नरपतिकृतमञ्जुलतानम् ।
नृत्यति यत्र सदा सुरवनिता, स्वर्गलोकशुभशय्याजनिता ॥३०॥
भवति यत्र वादित्रनिनादो, दूरीकृतमिथ्यामतवादः ।
यत्र यान्ति पापानि सुविलयं, वंदे तं जिनपतिवरनिलयम् ॥३१॥
सुरीलोचनानंदनचन्द्रं, दूराभृताखिलजननतन्द्रम् ।
जिनपतिभवनं परमपवित्रं, सदा वन्द्यते पापलवित्रम् ॥३२॥
मोहनिशाचरशातनवेत्रं, रक्षित देवासुर वरनेत्रम् ।
मया वन्द्यते जिनपतिसदनं, सदा शाश्वतं जिनरिपुकदनम् ॥३३॥
आत्मरूपनिर्दर्शनदक्षं, पार्श्वविशोभितशोभनकक्षम् ।
मया वन्द्यते जिनवरभवनं, दुष्कृतबन्धसमुच्चयलवनम् ॥३४॥
त्रिभुवनपतिजिनमूर्तिसनाथं, सदा विहितदुष्कर्मप्रमाथम् ।
मया वन्द्यते सुन्दरशोभं, जिनपतिभवनं हतविक्षोभम् ॥३५॥
येषां तुंगतमे वरशृंगे, खचितरत्नभा भ्राजि नभोऽङ्गे ।
सदा शोभते निर्मलकेतु, र्निखिलभव्यजनमोदनहेतुः ॥३६॥
पृथुनिहितमणिरश्मिकलापै-र्भाभरकृतसुरधनुरपलापैः ।
यस्य नभो विनिभाति समन्ता-न्मया वन्द्यते तदह मनन्तात् ॥३७॥
मोदान्मोहपलायनवीरं, समतासुधास्यन्दने धीरम् ।
वन्देऽकृत्रिमजिनपतिभवनं, देवोत्पादितजिनवरसवनम् ॥ ३८ ॥

मालिनीछन्दः ।

सकलभुवनमध्ये विद्यमानान् जिनानां
वरविभवसमेताञ्छान्तिसत्सौख्यदातॄन् ।
नमति य इह नित्यं रम्यदेहान् निकाय्यान्
व्रजति स हि सुमुक्तिं क्षिप्रमेवाभिरामाम् ॥ ३९ ॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यसम्बन्ध्यकृत्रिमजिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति० ।

अनुष्टुप् छन्दः ।

ऊर्ध्वाधोमध्यलोकेषु, सन्ति ये हि जिनालयाः ।
निखिलांस्तान्भक्त्या नौति, पन्नालालो निरन्तरम् ॥ ४० ॥

इत्याशीर्वादः ।

पाताल्लोकसम्बन्ध्यकृत्रिम जिनचैत्यालयपूजा ।

उपजातिछन्दः ।

पाताललोके जिनमन्दिराणि
राजन्ति चञ्चद्ध्वजशोभितानि ।
मुदा युतो भक्तिभराभिपूता-
न्नाह्वानकादीन् विदधामि तेषाम् ॥ ४१ ॥

ॐ ह्रीं पाताललोकसम्बन्ध्यकृत्रिमजिनालयाः ! अत्रावतरतावतरत संवौषट् ।

ॐ ह्रीं पाताललोकसम्बन्ध्यकृत्रिमजिनालयाः ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः ।

ॐ ह्रीं पाताललोकसम्बन्ध्यकृत्रिमजिनालयाः ! अत्रमम सन्निहिता भवत भवत वषट् ।

अष्टकम् ।

वंशस्थवृत्तम् ।

सुवर्णकुम्भाभिभृतेन हारिणा,
सुरस्रवन्तीहृदगेन वारिणा ।
मणिप्रभायां प्रथितान्सदातना–
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥ ४२ ॥

ॐ ह्रीं पातालोकसम्बन्ध्यकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा: ।

सुशीतलैर्गन्धयुतैर्मनोहरैः
सितैः स्वगन्धाहृतभृङ्गसंभरैः ।
मणिप्रभायां प्रथितान्सदातना–
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥४३॥ चन्दनम् ।

अखण्डमुक्ताफलवृन्दसुन्दरै–
र्विशोधितैः शालिभवैर्विदांवरैः ।
मणिप्रभायां प्रथितान्सदातना–
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥४४॥ अक्षतम् ।

सुगन्धितैः सुन्दरपारिजातकैः
प्रसूनकैर्दत्तहृषीकशातकैः ।
मणिप्रभायां प्रथितान्सदातना–
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥ ४५ ॥ पुष्पम् ।

सुनव्यगव्यादिकृताभियोजनैः
क्षुधाहरैश्चारुतरैः सुभोजनैः ।

मणिप्रभायां प्रथितान्सदातना-
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥ ४६ ॥ नैवेद्यम् ।

सुदीपकैर्दिव्यविभाविभासिभिः,
प्रभाभरैरुक्षसमूहहासिभिः ।

मणिप्रभायां प्रथितान्सदातना-
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥४७॥ दीपम् ॥

सुगन्धिताशेषसमस्तदिक्तटैः,
सुधूपनैर्वाशितकर्मसद्भटैः ।

मणिप्रभायां प्रथितान्सदातना-
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥४८॥ धूपम् ।

फलैरलं स्वादुतरैर्मनोहरै-
र्लवङ्गपूगादिमुखैः सुखाकरैः ।

मणिप्रभायां प्रथितान्सदातना-
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम् ॥४९॥ फलम् ।

जलैः सुगन्धाक्षतपुष्पदीपनै-
र्निवेद्यकैः सत्फलचारुधूपनैः ।

मणिप्रभायां प्रथितान्सदातना-
नकृत्रिमाञ्जैनगृहान्यजाम्यहम ॥ ५० ॥ अर्घ्यम् ।

अथ प्रत्येकार्घ्याणि ।

उपजातिः ।

पाताललोके किल पङ्कभागे ।
वसन्ति नामासुरसंज्ञदेवाः ॥
गृहेषु तेषां भवनानि सन्ति ।
जिनोत्तमानां जगतीपतीनाम् ॥ ५१ ॥

आर्या ।

अष्टैककृतिलक्षप्रमितानसुरकुमाराख्यदेवभवनेषु ।
वन्देऽकृत्रिमचैत्यालयान्हि चारून् विभूतिसंयुक्तान् ॥५२॥

ॐ ह्रीं असुरकुमारभवनवासिनां भवनेषु विराजमानेभ्यश्चतुः षष्टि-लक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाताललोके खरभागमध्ये ।
ये नागलोका निवसन्ति नित्यम् ॥
गृहेषु तेषां भवनानि सन्ति ।
जिनोत्तमानां जगतीपतीनाम् ॥ ५३ ॥

सागरवसु (८४) लक्षमितान्नागकुमाराख्यदेवभवनेषु ।
वन्देऽकृत्रिमचैत्यालयान्हि चारून् विभूतिसंयुक्तान् ॥५४॥

ॐ ह्रीं नागकुमारभवनवासिनां भवनेषु विराजमानेभ्यश्चतुरशीति-लक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाताललोके खरभागमध्ये
विद्युत्कुमारा निवसन्ति देवाः ।

गृहेषु तेषां भवनानि सन्ति

जिनोत्तमानां जगतीपतीनाम ॥ ५५ ॥

षट्सप्ततिलक्षमितांस्तडित्कुमाराख्यदेवभवनेषु ।

वन्देऽकृत्रिमचैत्यालयान्हि चारून् विभूतिसंयुक्तान् । ५६॥

ॐ ह्रीं विद्युत्कुमारभवनवासिनां भवनेषु विराजमानेभ्यः षट्सप्तति-लक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाताललोके खरभागमध्ये

सुराः सुपर्णा निवसन्ति नित्यम् ।

गृहेषु तेषां भवनानि सन्ति

जिनोत्तमानां जगतीपतीनाम ॥ ५७ ॥

द्वासप्ततिलक्षमितान्

सुपर्णदेवीयदिव्यभवनेषु ।

वन्देऽकृत्रिमचैत्यालयाद्वि

चारून् विभूतिसंयुक्तान् ॥ ५८ ॥

ॐ ह्रीं सुपर्णकुमारभवनवासिनां भवनेषु विराजमानेभ्यः षट्सप्तति-लक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाताललोके खरभागमध्ये-

वसन्ति देवाः किल वह्निसंज्ञाः ।

गृहेषु तेषां भवनानि सन्ति ।

जिनोत्तमानां जगतीपतीनाम ॥ ५९ ॥

षट्सप्ततिलक्षमितान्-

वैश्वानरदेवदिव्यभवनेषु ।

वन्देऽकृत्रिमचैत्यालयान्हि-
चारून् विभूतिसंयुक्तान् ॥ ६० ॥

ॐ ह्रीं अग्निकुमारभवनवासिनां भवनेषु विराजमानेभ्यः षट्सप्तति-लक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाताललोके खरभागमध्ये,
वसन्ति देवाः किल वातसंज्ञाः ।
गृहेषु तेषां भवनानि सन्ति,
जिनोत्तमानां जगतीपतीनाम ॥ ६१ ॥
षण्णवतिलक्षसुमितान
वातकुमाराख्यदेवभवनेषु ।
वन्देऽकृत्रिमचैत्यालयान्हि-
चारून् विभूतिसंयुक्तान् ॥ ६२ ॥

ॐ ह्रीं वातकुमारभवनवासिनां भवनेषु विराजमानेभ्यः षण्णवति लक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाताललोके खरभागमध्ये,
वसन्ति देवाः स्तनिताभिधानाः ।
गृहेषु तेषां भवनानि सन्ति,
जिनोत्तमानां जगतीपतीनाम ॥ ६३ ॥
षट्सप्ततिलक्षमितान्-
मेघकुमारीयरम्यनिलयेषु ।
वन्देऽकृत्रिमचैत्यालयान्हि,
चारून् विभूतिसंयुक्तान् ६४ ॥

ॐ ह्रीं स्तनितकुमारभवनवासिनां भवनेषु विराजमानेभ्यः षट्सप्तति लक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाताललोके खरभागमध्ये,
वसन्ति देवाः किल सिन्धुसंज्ञाः ।
गृहेषु तेषां भवनानि सन्ति
जिनोत्तमानां जगतीपतीनाम ॥ ६५ ॥

षट्सप्ततिलक्षमितान्
सिन्धुकुमाराख्यदेवसदनेषु ।
वन्देऽकृत्रिमचैत्यालयान्हि,
चारून् विभूतिसंयुक्तान् ॥ ६६ ॥

ॐ ह्रीं उदधिकुमारभवनवासिनां भवनेषु विराजमानेभ्यः षट्सप्तति-लक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाताललोके खरभागमध्ये,
द्वीपाभिधा नाम वसन्ति देवाः ।
गृहेषु तेषां भवनानि सन्ति,
जिनोत्तमानां जगतीपतीनाम ॥ ६७ ॥

षट्सप्ततिलक्षमितान्-
द्वीपकुमारीयशस्यसदनेषु ।
वन्देऽकृत्रिमचैत्यालयान्हि,
चारून् विभूतिसंयुक्तान् ॥ ६८ ॥

ॐ ह्रीं द्वीपकुमारभवनवासिनां भवनेषु विराजमानेभ्यः षट्सप्तति-लक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पाताललोके खरभागमध्ये
वसन्ति देवाः किल दिक्कुमाराः ।
गृहेषु तेषां भवनानि सन्ति
जिनोत्तमानां जगतीपतीनाम् ॥ ६९ ॥
षट्सप्ततिलक्षमितान्
ककुप्कुमारीयरम्यभवनेषु ।
वन्देऽकृत्रिमचैत्यालयान्हि-
चारून् विभूतिसंयुक्तान् ॥ ७० ॥

ॐ ह्रीं दिक्कुमारभवनवासिनां भवनेषु विराजमानेभ्यः षट्सप्तति-लक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

शार्दूलविक्रीडितम् ।

पाताले खरपङ्कभागलसिता रत्नप्रभाभासिता
जैनेन्द्रप्रतिमायुताः सुनुता दोषोच्चयेन च्युताः ।
राजन्ते जिनराजरम्यनिलयाः शान्त्यालयाः संलया
भ्राजत्केतुसमूहशोभितशिरोभागा जितागाः सदा ॥७१॥

आर्या ।

द्वासप्ततिलक्षमितान्
कोटीसप्तकप्रमाणयुक्तांश्च ।
वन्देऽकृत्रिमचैत्यालयान्हि
चारून् विभूतिसंयुक्तान् ॥ ७२ ॥

ॐ ह्रीं पाताललोके खरपंकभागयोर्विराजमानेभ्यः सप्तकोटिद्वा-सप्ततिलक्षप्रमिताकृत्रिमजिनालयेभ्य पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

असंख्येया जिनागारा
महाकारा महाध्वजाः ।
व्यन्तराणां निकाय्येषु,
सन्ति तान् भक्तितो नुमः ॥ ७३ ॥

ॐ ह्रीं व्यन्तराणामावासेषु विराजमानेभ्योऽसंख्येयजिनालयेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला ।

उपजाति ।

रत्नप्रभाभूमिविराजितानि
चञ्चत्पताकावलिशोभितानि ।
जैनेन्द्रबिम्बेन युतानि चैत्या-
लयानि नित्यं परिपूजयामि ॥ ७४ ॥

चतुष्पदी (१६ मात्राः)

चित्रापृथिवीतोऽधोभागे, पालनतत्परसकलसुनागे ।
सप्तरज्जुपरिमाणमेते, वरवेत्रासनकृतिमिरुपेते ॥ ७५ ॥
सप्तभूमयस्तत्र लसन्त्यो, नीचैर्नीचैः सन्ति भवन्त्यः ।
तासु प्रथमा रत्नविभास्ति, विविधरत्नभरलसिता यास्ति ॥७६॥
तस्याः सन्ति वरास्त्रिकभेदा, जीवाः सन्ति यत्र बहुखेदाः ।
प्रथमो भागः खलु खरनामा, निर्मितविविधदेवजनधामा ॥७७॥
असुरकुमारं त्यक्त्वाशेषा, भवनवासिनः सुन्दरवेषाः ।
तत्र वसन्ति सदा वरदेवाः, कृतजिनपतिपदकमलजसेवाः ॥७८॥
तथा व्यन्तरा राक्षसहीना, भूत्वा तत्र वसन्ति महीनाः ।

भागोऽप्रथमः पङ्कसुनामा, विविधरत्नभाभासितधामा ॥७९॥
यस्मिन् सन्ति सदा सुरसंज्ञाः, क्रीडनपीडनविहसनविज्ञाः ।
किञ्च राक्षसा यत्र वसन्ति, विविधविनोदैर्ये विलसन्ति ॥८०॥
अनयोः सन्ति देवभवनानि, भूतियुतानि सदा सवनानि ।
तेषु सन्ति जिनचैत्यागारा, उज्वलरूपाः सुरसुखकाराः ॥८१॥
चैत्यागारे प्रतिमा रम्या, राजन्ते सुरपतितातिनम्याः ।
पूजयन्ति देवाः प्रतिदिवसं, जिनपतिप्रतिमाः संमदविवशम् ॥८२॥
गायति यत्र सदा सुरनारी, नृत्यति यत्र सुरः सुखकारी ।
कापि वादयति मधुरां वीणां, कापि करोति सुगीतिमरीणाम् ॥८३
अहमपि वन्दे जिनभवनालीं, दूरीकृतसंसारप्रणालीम ।
अब्बहुलोऽस्ति तृतीयो भागो, ह्यास्ते यत्र नरो विहितागाः ॥८४॥
भुङ्क्ते यत्र जनो बहुखेदं, केवलिगम्य यदीयविभेदम ।
ततो भीरुभिर्नरैः प्रहेयं, पापं जिनपदयुगलं गेयम ॥८५॥

रथोद्धता ।

भावनेषु भवनेषु सन्ति ये
श्रीजिनेन्द्रनिलया मनोहराः ।
तान्नमामि वरभक्तिभावतः
कर्मवृन्दनशनाय सन्ततम ॥ ८६ ॥

ॐ ह्रीं पाताललोकमध्ये विराजमानेभ्योऽकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जाप्य—ॐ ह्रीं अधोलोकस्थिताकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नमः ।

(इस मन्त्रका १०८ वार जाप करना चाहिये) ।

अनुष्टुप् ।

अधोलोकस्थिता नित्यं पन्नालालेन वन्दिताः ।
जिनचैत्यालया सर्वे कुर्यासुर्मङ्गलं सदा ॥ ८७ ॥

इति पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

अथ मध्यलोकस्थित जिनालय पूजा ।

उपजातिः ।

मनुष्यलोके यतिनाथवन्द्या, देवेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्रनन्द्याः ।
उत्तुंगशृंगोल्लिखिताभ्रलोकाः, स्वदर्शनोल्लुण्ठितभव्यशोकाः ॥८८
अकृत्रिमा जैनगृहा लसन्तो, विभान्ति ये सुन्दरमूर्तिमन्तः ।
आह्वानकाद्यैर्विधिभिर्भजामि, तानत्र सर्वान् वसुधा यजामि ॥८९

ॐ ह्रीं मध्यलोकस्थितकृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयाः ! अत्रावतरतावतरत संवौषट्, अत्र तिष्ठत तिष्ठतः ठः ठः, अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् ।

अष्टकम् ।

द्रुतविलम्बितम् ।

जिनवचोऽमृतशीतलसारया,
त्रिपथगानदनीरसुधारया ।
मनुजलोकगतां जिनमन्दिरा–
वलिमिहस्थित एव मुदा यजे ॥ ९० ॥ जलम् ।
सरससौरभसारसमागत–
भ्रमरसंगतचन्दनमालया ।

मनुजलोकगतां जिनमन्दिरा-
वलिमिह स्थित एव मुदा यजे ॥ ९१ ॥ चंदनं ।
जिनपकीर्तिलताफलशोभितैः
शकलवर्जिततण्डुलमण्डलैः ।
मनुजलोकगतां जिनमन्दिरा-
वलिमिहस्थित एव मुदा यजे ॥ ९२ ॥ अक्षतं ।
मदनदुःखविनाशनहेतवे
मदनबाणचयैरलिसंचितैः ।
मनुजलोकगतां जिनमन्दिरा-
वलिमिहस्थित एव मुदा यजे ॥ ९३ ॥ पुष्पम् ।
सुकविकाव्यकथामृतमाधुरी-
रसभृतैः सुहितैश्चरुसंचयैः ।
मनुजलोकगतां जिनमन्दिरा-
वलिमिहस्थित एव मुदा यजे ॥ ९५ ॥ नैवेद्यम् ।
जिनपबोधलवप्रतिभासुरै
स्तिमिरनाशकरैर्वरदीपकैः ।
मनुजलोकगतां जिनमन्दिरा-
वलिमिहस्थित एव मुदा यजे ॥ ९५ ॥ दीपम् ।
निजसुगन्धिसुगन्धितदिक्चयै-
र्मलयजागुरुजातसुधूपनैः ।
मनुजलोकगतां जिनमन्दिरा-
वलिमिहस्थित एव मुदा यजे ॥ ९६ ॥ धूपम् ।

सकललोकसुलोचनहारिभिः
सरसमञ्जुतमैः फलराशिभिः ।
मनुजलोकगतां जिनमन्दिरा-
वलिमिहस्थित एव मुदा यजे ॥ ९७ ॥ फलम् ।
सलिलचन्दनतण्डुलपुष्पकै-
श्चरुसुदीपसुधूपफलैस्तथा ।
मनुजलोकगतां जिनमन्दिरा-
वलिमिहस्थित एव मुदा यजे ॥ ९८ ॥ अर्घ्यम् ।

प्रत्येकार्घ्याणि ।

आर्या ।

अर्धतृतीये द्वीपे सुमेरुशैला भवन्ति पञ्चैव ।
मेरौ मेरौ सन्ति च जिनालया षोडशप्रमिताः ॥ ९९ ॥
एवं पञ्च सुमेरुषु भवन्त्यशीतिप्रमाणसंयुक्ताः ।
जिनराजरम्यनिलया वन्दे तान् सर्वदा शिरसा ॥ १०० ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्ध्यशीति जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

एकैकस्य सुमेरोश्चत्वारः सन्ति गजदन्ताः ।
प्रतिगजदन्तं चैत्यालयश्च संशोभते ह्येकः ॥ १०१ ॥
एवं गजदन्तानां विंशतिचैत्यालया विराजन्ते ।
नानारत्नविचित्रा वन्दे तान् सर्वदा शिरसा ॥ १०२ ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिविंशतिगजदन्तेषु विद्यमानेभ्यो विंशति-जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

एकैकस्य सुमेरोर्विदेहवर्षाणि सन्ति पञ्चैव ।
एकैकत्रविदेहे वक्षाराः सन्ति षोडशकाः ॥ १०३ ॥
वक्षारे वक्षारे ह्येकैको भाति जिनसौधः ।
इत्थं वक्षाराणामशीति चैत्यालया विराजन्ते ॥ १०४ ॥
उत्तुङ्गशृङ्गसहिताश्चञ्चत्केतुप्रतानसंछन्नाः ।
वादित्रनादसहिता वन्दे तान् सर्वदा शिरसा ॥ १०५ ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिपञ्चविदेहगताशीतिवक्षारगिरि शिखरस्थितेभ्योऽशीतिजिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

एकैकस्य सुमेरोः कुलशैलाः सन्ति षट् च षट् चैव ।
एकैकत्र कुलाद्रा वैकैकं भाति जिनभवनम् ॥ १०६ ॥
एवं त्रिंशत्संख्याः कुलाद्रिशृंगेषु जिनगृहाः सन्ति ।
सुरविद्याधरवन्द्या वन्दे तान् सर्वदा शिरसा ॥ १०७ ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धित्रिंशत्कुलाचलेषु विद्यमानेभ्यर्लिशज्जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

एकैकस्य सुमेरोर्वैताढ्याः पर्वताश्चतुस्त्रिंशत् ।
एकैकत्र च तस्मिन् जिनालयो राजते ह्येकः ॥ १०८ ॥
एवं सप्ततिसहितं शतकं ह्येकं जिनेन्द्रगेहानाम् ।
वैताढ्येषु समस्ति वन्दे तान् सर्वदा शिरसा ॥ १०९ ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिवैताढ्यपर्वतेषु विद्यमानेभ्यः सप्तत्युत्तरशतप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

एकैकस्य सुमेरोर्द्वौ द्वौ देवोत्तरौ कुरू प्रान्तौ ।
विद्येते विद्यन्ते तेषु च सर्वेषु दश सुगृहाः ॥ ११० ॥

एते जिनवरनिलया जम्बूवृक्षादिरम्यशिखरेषु ।
राजन्ते द्युतिमन्तो वन्दे तान् सर्वदा शिरसा ॥ १११ ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिदेवोत्तरकुरुषु जम्बूवृक्षाद्युपरि विद्यमानेभ्यो दशजिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अनुष्टुप् ।

इष्वाकारेषु शैलेषु सिन्धुसंख्येषु राजते ।
चतुष्कं जिनगेहानां वन्दे भक्तिभरेण तत् ॥ ११२ ॥

ॐ ह्रीं धातकीखण्ड पुष्करार्धद्वीपयोर्विद्यमानेषु चतुष्विष्वाकार-गिरिषु विद्यमानेभ्यश्चतुर्भ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

उपजाति ।

चत्वारि चैत्यायतनानि सन्ति
मर्त्योत्तरे पर्वतके महान्ति ।
अनेकरत्नप्रचितानि तानि
वन्दे सदा भव्यजनाश्रितानि ॥ ११३ ॥

ॐ ह्रीं मानुषोत्तरपर्वते विद्यमानेभ्यश्चतुर्भ्यो जिनचैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

द्वीपेऽष्टमे सन्ति जिनोत्तमानां
नन्दीश्वरे रम्यजिनालया ये ।
द्वौ चैव पञ्चाशत्संख्यया तान्
यजे सदाहं वरभक्तिभावात् ॥ ११४ ॥

ॐ ह्रीं नन्दीश्वरद्वीपसम्बन्धि द्वापञ्चाशज्जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्व-पामीति स्वाहा ।

शार्दूलविक्रीडितम्।

चत्वारो रुचिके गिरौ निरुपमाश्चैत्यालयाः सन्ति ये
नानारत्नमया विशालशिखराः सत्प्रातिहार्याश्रिताः।
तुंगद्वारविशोभिनो सुरगणस्तोत्रध्वनिव्याततता
वन्दे तानमरप्रधानमहितान् जैनेन्द्रबिम्बैर्युतान् ॥११५॥

ॐ ह्रीं एकादशे रुचिकवरद्वीपे रुचिकगिरौ विद्यमानेभ्यश्चतुर्भ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुष्टुप्।

कुण्डलद्वीपमध्ये भू-भामिनीकुण्डलोपमे।
कुण्डलाख्ये गिरौ भान्ति, चत्वारो जिनपालयाः ॥११६॥
देवविद्याधरैर्वन्द्याश्चारणर्षिसमर्चिताः
सुरीसंगीतसंपूर्णा, वाणीवीणारवाञ्चिताः ॥ ११७ ॥
जैनेन्द्रप्रतिमायुक्ता, उच्चैः कूटविशोभिनः।
भक्त्या तान् सर्वदा वन्दे, यजे नीरादिभिस्तथा ॥११८॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशद्वीपमध्यस्थितरुचिकगिरौ विद्यमानेभ्यश्चतुर्भ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आर्या।

एवं मध्ये लोके जिनेन्द्रचैत्यालया विराजन्ते।
अष्टपञ्चाशदुत्तरशतकचतुष्कप्रमाणसंयुक्ताः ॥ ११९ ॥
देवाः खगपतिनिचयाश्चारणऋद्ध्या युताश्च यतिनाथाः।
साक्षात्तान् वन्दन्ते प्रयान्ति मोदं च दुर्लभं पुंसाम् ॥१२०॥
किन्तु वयं सीदामः पुरा कृताद्दष्टभारतो नष्टाः।
साक्षात्तत्र न गन्तुं शक्ता अत्र स्थितास्तेन ॥ १२१ ॥

निन्दन्तो निजभाग्यं मनसि निधायानवद्यतन्मूर्तिम् ।
अश्नामो जलचन्दनमुख्यैर्द्रव्यैः प्रमोदपरिपूर्णाः ॥ १२२ ॥

ॐ ह्रीं मध्यलोकसम्बन्धिपञ्चाशदुत्तरचतुःशतप्रमितजिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अनुष्टुप ।

ज्योतिर्देवविमानेषु भास्वज्ज्योतिः प्रभासिषु ।
असंख्येया गृहा जैनाः सन्ति तान् भक्तितो नुमः ॥ १२३ ॥

ॐ ह्रीं ज्योतिरावासेषु विद्यमानेऽभ्योऽसंख्यजिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

उपजातिः ।

मनुष्यलोके विहिता मनुष्यैश्चैत्यालयाः सन्ति महामनोज्ञाः ।
उत्तुङ्गशृङ्गेण विभासमाना लसत्पताकावलिशोभमानाः ॥१२४॥
विराजमाना वरतोरणाद्यै रसन्मृदङ्गध्वनिपूरिताशाः ।
जिनेन्द्रबिम्बाञ्चितवेदिमध्या माणिक्यभित्त्युच्चयराजितान्ताः॥१२५
संख्याव्यतीताः परया विभूत्या युता नुता देवमनुष्यवर्गैः ।
भक्त्या प्रवन्दे सकलान् सदा तान् यजे तथा स्वच्छजलादिभिश्च ॥

ॐ ह्रीं मनुष्यलोके विद्यमानेभ्यो मनुजकृतेभ्यः कृत्रिमजिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला ।

विद्याधराश्चारणऋद्धियुक्ता,
मुनीश्वरा दिव्यनिबोधयुक्ताः ।
सुरासुरेन्द्राश्च नमन्ति यानि,
कुर्युः शिवं जैनगृहाणि तानि ॥ १२७ ॥

मध्यमलोके जिनपागाराः,
सन्ति विशाला विपुलाकाराः ।
संख्या तेषां सिन्धुशतानि,
ज्ञेया द्वयूनषष्टिसहितानि ॥ १२८ ॥
पञ्चसु मेरुषु सन्ति विशाला,
गृहा अशीतिर्नतसुरमालाः ।
वक्षारेषु सन्ति तावन्ति,
जिनचैत्यायतनानि महन्ति ॥ १२९ ॥
गजदन्तेषु विंशतिः सन्ति,
जिनभवनानि सुरैर्विलसन्ति ।
त्रिंशत्कुलगिरिषु भ्राजन्ते,
जिनगेहानि सदा राजन्ते ॥ १३० ॥
वैताढ्येषु नगेषु विभान्ति,
सप्ततियुक्तशतं सुमहान्ति ।
कुरुद्वये दश जिनपतिनिलया,
भान्ति सदा दूरीकृतविलयाः ॥१३१ ॥
इष्वाकारशैलशिखरेषु,
चत्वारो निलयाः ससुरेषु ।
गिरौ मानुषोत्तरवरसंज्ञे,
तावन्तः सुरकेलिमनोज्ञे ॥ १३२ ॥
द्वापञ्चाशच्चैत्यागारा,
नन्दीश्वरमध्ये सुखकाराः ।

रुचिकगिरौ चत्वारः सन्ति,
सानुगतैर्मणिभिर्विहसन्ति ॥ १३३ ॥
नगे कुण्डले जिनसदनाना-
मस्ति चतुष्कं जितमदनानाम् ।
ज्योतिर्देवगृहेषु गृहाणि,
जैनानि च संख्या विरहाणि ॥ १३४ ॥
इमेऽकृत्रिमा जिनपतिवासा,
धृतदेवीजनमञ्जुलहासाः ।
सदा शाश्वता धृतगुणभाराः,
शोभन्ते च मनोज्ञाकाराः ॥ १३५ ॥
देवखगा मुनयो गुणनिधयो,
वन्दन्ते गत्वा कृतविधयः ।
शक्तिरहितभूगोचरलोकाः,
सीदन्तीह मनसि धृतशोकाः ॥ १३६ ॥
एभ्योऽन्यानि सन्ति भवनानि,
मनुजकृतानि पापलवनानि ॥ १३६ ॥
वन्देऽहं त्रिकालं भक्त्या,
निखिलनिकाय्यान् परमासक्त्या ॥ १३७ ॥
× × ×
यावन्ति जैनानि गृहाणि मध्ये,
लोके लसन्तीह कृताकृतानि ।
तावन्ति मर्त्यामरवन्दितानि,
वन्दे त्रिकालं परया मुदाहम ॥ १३८ ॥

ॐ ह्रीं मध्यलोकसम्बन्धिकृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

मध्यलोकस्थिता नित्यं पन्नालालेन वन्दिताः ।
जिनचैत्यालयाः सर्वे कुर्यासुः मङ्गलं सदा ॥ १३९ ॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

जाप्यमंत्रम्—

ॐ ह्रीं मध्यलोकसम्बन्धिकृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नमः ।

(इस मंत्रका १०८ बार जाप करना चाहिये)

अथोर्ध्वलोकस्थिताकृत्रिमजिनचैत्यालय पूजा ।

ऊर्ध्वलोके सदालोकाः सन्ति चैत्यालया वराः ।
कुर्वेऽर्चनं सदा तेषामाह्वानादिपुरस्सराम् ॥ १४० ॥

ॐ ह्रीं ऊर्ध्वलोकस्थिताकृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयसमूह । अत्रावतरावतर संवौषट् । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव२ वषट् ।

उपजातिः ।

गाङ्गेयतोयेन विशोभितेन,
सुवर्णभृङ्गारसमर्पितेन ।
चैत्यालयान्नाकिनिकेतनस्था-
न्यजे सदाहं वरभक्तिभावात् ॥ १४१ ॥ जलम् ।

सुगन्धिना चन्दनसद्द्रवेण,
सुगन्धिताशेषदिशातटेन ।
चैत्यालयान्नाकिनिकेतनस्था-
न्यजे सदाहं वरभक्तिभावात् ॥ १४२ ॥ चन्दनम् ।

प्रक्षालितैरक्षतमञ्जुपुञ्जै-
मुक्त्यङ्गनाविभ्रमहास्यकुञ्जैः ।
चैत्यालयान्नाकिनिकेतनस्था-
न्यजे सदाहं वरभक्तिभावात् ॥१४३॥ अक्षतान् ।
प्रसूनभारेण मनोहरेण
सभृङ्गसङ्गेन सुखाकरेण ।
चैत्यालयान्नाकिनिकेतनस्था-
न्यजे सदाहं वरभक्तिभावात् ॥ १४४ ॥ पुष्पम् ।
पीयूषसारैश्चरुपुञ्जभारै-
र्जिह्वेन्द्रियालम्पटतापहारैः ।
चैत्यालयान्नाकिनिकेतनस्था-
न्यजे सदाहं वरभक्तिभावात् ॥१४५॥ नैवेद्यम् ।
स्वकीयभाभ्राजितपार्श्वदेशैः,
घृतोद्भवै रम्यसुदीपकेशैः ।
चैत्यालयान्नाकिनिकेतनस्था-
न्यजे सदाहं वरभक्तिभावात् ॥ १४६ ॥ दीपम् ।
महामनोज्ञैर्वरगन्धभूपैः,
पाटीरधूपै रमणीयरूपैः ।
चैत्यालयान्नाकिनिकेतनस्था-
न्यजे सदाहं वरभक्तिभावात् ॥ १४७ ॥ धूपम् ।
फलैः फलैरिन्द्रियमोददानै-
र्महाबलैः सुन्दरतानिधानैः ।

चैत्यालयान्नाकिनिकेतनस्था-
न्यजे सदाहं वरभक्तिभावात् ॥ १४८ ॥ फलम् ।
पाटीरनीरैश्चरुदीपधूपैः,
फलाक्षतैः सूनचयैः सुरूपैः ।
चैत्यालयान्नाकिनिकेतनस्था-
न्यजे सदाहं वरभक्तिभावात् ॥ १४९ ॥ अर्घ्यम् ।

अथ प्रत्येकार्घ्याणि ।

युगत्रिलक्षप्रमितानि सन्ति, सौधर्ममध्ये जिनमन्दिराणि ।
सेन्द्रेन्द्रसन्दोहसमर्चितानि समर्चयामीह मुदा स्थितोऽहम् ॥ १५०

ॐ ह्रीं सौधर्मस्वर्गमध्ये द्वात्रिंशल्लक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

आर्या ।

अष्टाविंशतिलक्षप्रमिताश्चैत्यालया जिनेन्द्राणाम् ।
ऐशाने वरनाके सन्ति सदा तानहं वन्दे ॥ १५१ ॥

ॐ ह्रीं ऐशानस्वर्गमध्येऽष्टाविंशतिलक्षप्रमितेभ्योऽर्घ्यं निर्वपा० ।

सनत्कुमारत्रिदिवे द्वादशलक्षप्रमाणवेश्मानि ।
सन्ति जिनानां सततं वन्दे तानीह भक्त्याहम् ॥ १५२ ॥

ॐ ह्रीं सनत्कुमारस्वर्गमध्ये द्वादशलक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

उपजातिः ।

माहेन्द्रमध्ये विनिभान्ति भान्ति महान्ति चैत्यायतनानि तानि ।
वन्दे विभूत्या वसुलक्षसंख्या-युतानि नित्यं सुरवंदितानि ॥१५३

ॐ ह्रीं माहेन्द्रस्वर्गमध्येऽष्टलक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अनुष्टुप् ।

ब्रह्मब्रह्मोत्तरस्वर्गम-ये सन्ति जिनालयाः ।
लक्षं चत्वारि वन्दे तान् सेन्द्रसंघसमर्चितान् ॥ १५४ ॥

ॐ ह्रीं ब्रह्मब्रह्मोत्तरस्वर्गमध्ये चतुर्लक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कापिष्टे विष्टपे रम्ये ललामे लान्तवे तथा ।
जिनराजगृहाः सन्ति पञ्चाशद्धि सहस्रकम ॥ १५५ ॥
देवदेवेन्द्रवन्द्यास्ते माणिक्यालोकमण्डिताः ।
सुरीसंगीतसंपूर्णा वन्दे तान भक्तितः सदा ॥ १५६ ॥

ॐ ह्रीं लान्तवकापिष्टस्वर्गमध्ये पञ्चाशत्सहस्रप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

शुक्रे चापि महाशुक्रे स्वर्गे स्वर्गिविशोभिते ।
सहस्रं जिनगेहानि चत्वारिंशद्विभान्ति हि ॥ १५७ ॥
जिनेन्द्रबिम्बयुक्तानि युतानि मणिमण्डलैः ।
वैजयन्ती विशोभीनि पूजयामि निरन्तरम् ॥ १५८ ॥

ॐ ह्रीं शुक्रमहाशुक्रस्वर्गमध्ये चत्वारिंशत्सहस्रप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

शतारे च सहस्रारे षट्सहस्रं जिनालयाः ।
राजन्ते तुङ्गशृङ्गाढ्या वैजयन्तीविराजिताः ॥ १५९ ॥
नानावन्दनमालाभिरञ्चिताः सञ्चितप्रभाः ।
देवदेवीनुता नौमि तानहं भक्तितः सदा ॥ १६० ॥

ॐ ह्रीं शतारसहस्रारस्वर्गमध्ये षट्सहस्रप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्यो-ऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंच चञ्चरीकावलीच्छन्दः ।

त्रयोदशादिषोडशान्त निर्जरालयेषु ते,
शतानिसप्त सन्ति भो जना ! जिनालया वराः ।
सुरेन्द्रवृन्दवन्दिताः सुरीसुगीतसंगता,
अनेकरत्नमण्डिता नमामि तानहं सदा ॥ १६१ ॥

ॐ ह्रीं आनतप्राणतारणाच्युतस्वर्गेषु सप्तशतप्रमितेभ्यो जिनालये-भ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

उपजाति ।

जिनालयाः सन्ति सुरालयेषु, ग्रैवेयकाद्येषु मनोहरेषु ।
अधःस्थितेषूत्तमकान्तिमन्तः, शतं तथैकादशचैत्यवन्तः ॥ १६२ ॥
अर्चन्ति नित्यं ह्यहमिन्द्रदेवाः कल्पद्रुमोत्थैर्वसुधाविभक्तैः ।
द्रव्यैर्मुदा यानहमद्य वन्दे तान् भक्तिभारेण नतेन मूर्ध्ना ॥ १६३

ॐ ह्रीं अधोग्रैवेयकेषु स्थितेभ्य एकादशोत्तरशतप्रमितेभ्यो जिना-लयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अनुष्टुप् ।

मध्यग्रैवेयकाख्येषु विमानेषु विशोभिताः ।
सप्तोत्तरशतं चैत्यालयाश्चारुप्रभाचिता ॥ १६४ ॥
नीरगन्धाक्षतैः पुष्पैश्चरुदीपसुधूपनैः ।
फलैश्चापि यजे नित्यं रोमाञ्चितकलेवरः ॥ १६५ ॥

ॐ ह्रीं मध्यग्रैवेयकेषु स्थितेभ्यः सप्तोत्तरशतप्रमितेभ्यो जिना-लयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

ऊर्ध्वग्रैवेयकाह्वेषु व्योमयानेषु राजिताः ।
नवन्यूनशतं सन्ति जिनेन्द्रप्रतिमालयाः ॥ १६६ ॥
संकल्पमात्रसंभूतैर्वसुभिर्द्रव्यसंभरैः ।
देवोत्तमाः सदा तेषां पूजां कुर्वन्ति भक्तितः ॥ १६७ ॥
अहमप्यद्य तान्वन्दे भक्तिनोदितमानसः ।
पापपुञ्जापहाराय पुण्यलाभाय मोदतः ॥ १६८ ॥

ॐ ह्रीं ऊर्ध्वग्रैवेयकेषु विद्यमानेभ्य एकनवतिप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

उपजातिः ।

चञ्चत्प्रभाः सन्ति जिनोत्तमानां
नवालया भव्यविभाभिरामाः ।
नवोत्तराह्वेषु विमानकेषु
भक्त्या युतस्तान् विनमामि नित्यम् ॥ १६९ ॥

ॐ ह्रीं नवोत्तरापरनाम नवानुदिशविमानेषु विद्यमानेभ्यो नवजिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अनुष्टुप् ।

विजयादिविमानेषु चैत्यागारा विराजिताः ।
पञ्चसंख्यामहाशोभा भक्तितो विनमामि तान् ॥ १७० ॥

ॐ ह्रीं पञ्चानुत्तरविमानेषु विद्यमानेभ्यः पंचसंख्येभ्यो जिनालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सहस्रत्रयसंन्यूनपञ्चाशीतिलक्षकम् ।
त्रयोविंशतिरुत्तुंगाः सन्ति चैत्यालयाश्च ये ॥ १७१ ॥
ऊर्ध्वलोके महालोके विलसद्देवलोकके ।

तान् भक्त्या सततं नौमि पापपुञ्जापहारिणः ॥ १७२ ॥

ॐ ह्रीं ऊर्ध्वलोके विद्यमानेभ्यस्त्रयोविंशत्यधिकसप्तनवतिसहस्रयुत-चतुरशीतिलक्षप्रमितेभ्यो जिनालयेभ्यः पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला ।

शार्दूलविक्रीडितम् ।

नृत्यद्देवनितम्बिनीरणझुणन्मञ्जीरमञ्जुध्वनि-
व्याप्ताशाः सुरगीतकोमलरवव्याच्छन्नमेघायनाः ।
चञ्चच्चित्रशिखण्डिनन्दनमुखप्रोद्दीर्णसद्देशनाः
कुर्यासुर्मम मङ्गलं जिनगृहा ऊर्ध्वादिलोकस्थिताः ॥ १७३ ॥

चतुष्पदीच्छन्दः (१६ मात्राः)

मेरुशृङ्गतः शिरसिजमात्रं, मुक्त्वा ह्यन्तरमसरीपात्रम् ।
अस्ति मनोहरऊर्ध्वो लोकः, पूर्वपुण्यभरनाशितशोकः ॥ १७४ ॥
सप्तरज्जुपरिमाणसुयुक्तो, विविधदेहभवबाधामुक्तः ।
पञ्चाशीतिकलक्षं नूनं, दशशतकत्रयसंख्यान्यूनम् ॥ १७५ ॥
त्रयोविंशतिप्रचितं ज्ञेयं, मुनिजननाथचयैः सुध्येयम ।
सन्ति तत्र जिनपतिभवनानि, कृतदेवेन्द्रदेवनवनानि ॥ १७६ ॥
विवरणमेतत्परममुदारं, शृणु तेषां कृतदुःखनिकारम् ।
सौधर्मे द्वात्रिंशल्लक्षं ह्यैशानेऽष्टाविंशतिलक्षम् ॥ १७७ ॥
सनत्कुमारे द्वादशलक्षं माहेन्द्रे स्वर्गेऽष्टौ लक्षम् ।
पञ्चमेऽथ षष्ठे च सुकक्षं जिनवरभणितं सागरलक्षम् ॥ १७८ ॥
ज्ञेया जिनपतिसुन्दरनिलया देववन्दिता हृतनिजनिलयाः ।
लान्तवकापिष्टे विज्ञेयाः पञ्चाशत्कसहस्रं ध्येयाः ॥ १७९ ॥

शुक्रमहाशुक्रे विज्ञेया-स्ततोदशोनसहस्रं ध्येयाः ।
शतारसहस्रारके ज्ञेयाः षट्सहस्रकं मुनिभिर्ध्येयाः ॥ १८० ॥
आनतादिकल्पेषु ज्ञेयाः सप्तशतं सुरपतिभिर्ध्येयाः ।
ग्रैवेयकनवकेषु ज्ञेयाः नवसहितं त्रिकशतकं ध्येयाः ॥ १८१ ॥
अनुदिशकेषु नवसु विज्ञेया नवजिनचैत्यगृहाः सुध्येयाः ।
पञ्चानुत्तरकेषु ज्ञेयाः पञ्चजिनेन्द्रनिकाय्या ध्येयाः ॥ १८२ ॥
एषु सुराः पूजां रचयन्ति जिनदेवस्तवनं रचयन्ति ।
गीतं यत्र सुरा गायन्ति सुरमुनयो जिनपं ध्यायन्ति ॥ १८३ ॥
देवीनिकरो नृत्यं रचयति देवचयो मधुरं वादयति ।
पूर्वभवे यैः सुकृतं सुकृतं लब्धं जन्म तत्र तैः सुभृतम् ॥ १८४ ॥
सीदामो वयमत्र निराशाः पूर्वपापकृतपुण्यविनाशाः ।
तेन परोक्षतया विनमामः सावधानमनसा ध्यायामः ॥ १८५ ॥

पुष्पिताग्राच्छन्दः ।

जिनपतिभवनानि यानि सन्ति
सुरनिलये सुरनाथवन्दितानि ।
अहमपि वसुधाविभक्तभूत्या
त्रिकसमयं सुयजामि तानि भक्त्या ॥ १८६ ॥

ॐ ह्रीं ऊर्ध्वलोकस्थितेभ्यस्त्रयोविंशतियुतसप्तनवतिसहस्रोत्तरचतुरशीतिलक्षप्रमितेभ्योऽकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुष्टुप् ।

ऊर्ध्वलोकस्थिता नित्यं पद्मालालेन वन्दिताः ।
जिनचैत्यालयाः सर्वे कुर्यासुर्मङ्गलं सदा ॥ १८७ ॥

इति पठित्वा पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।

जाप्यमन्त्रम्—ॐ ह्रीं ऊर्ध्वलोकस्थिताकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नमः ।

(इस मन्त्रका १०८ बार जाप करना चाहिये) ।

(इसप्रकार पूजा कर चुकनेके बाद मण्डलपर तीनों लोकोंके सामने क्रमसे अर्घ्य चढ़ाना चाहिये ।)

उपजाति ।

पाताललोके भ्रमणं विभिन्नं
येन स्वयं ध्यानमहायुधेन ।
जिनेन्द्रचन्द्रं विनमामि सम्यक्
तमाद्यवर्षे महतामहेन ॥ १८८ ॥

आर्या ।

भाद्रपदशुक्लपक्षे तृतीयदिवसे महोपवासाढ्यः ।
वन्देऽधोभवगमनच्छेदकरं सिद्धिभूकान्तम् ॥ १८९ ॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यतिलकव्रतस्याद्यवर्षे भाद्रपदशुक्लतृतीयायां गृहीतोपवासोऽहमधोलोकभ्रमणच्छेदकाय जिनायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

उपेन्द्रवज्रा ।

तपांसि तप्त्वा विविधानि येन
मनुष्यलोके भ्रमणं निरस्तम् ।
जिनेन्द्रदेवं कृतदेवसेवं
द्वितीयवर्षे विनमामि सम्यक् ॥ १९० ॥

उपजातिः ।

पक्षेवलक्षे वरभाद्रमासे
तृतीयवारेऽनशनव्रताढ्यः ।
सुमर्त्यलोकभ्रमणाभिघाते—
सिद्धं प्रसिद्धं विनमामि सम्यक् ॥ १९१ ॥

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यतिलकव्रतस्य द्वितीयवर्षे भाद्रपदशुक्लायां गृहीतोपवासोऽहं मध्यलोकभ्रमणच्छेदकाय जिनायाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

रत्नत्रयाराधनचिन्तनेन
येनोर्ध्वलोके भ्रमणं विभिन्नम् ।
जिनेन्द्रचन्द्रं हतमोहतन्द्रं
तृतीयवर्षे परिपूजये तम् ॥ १९२ ॥

मालिनी छन्दः ।

भाद्रे मासे शुक्लपक्षे तृतीये,
वारे भोज्यं दूरतः संप्रमुच्य ।
ऊर्ध्वे लोके भ्रान्तिभेदे नदीष्णं
सिद्धं शुद्धं पूजये बुद्धरूपम ॥ १९३ ।

ॐ ह्रीं त्रैलोक्यतिलकव्रतस्य तृतीयवर्षे भाद्रपदशुक्लतृतीयायां गृहीतोपवासोऽहमूर्ध्वलोकभ्रमणच्छेदनाय जिनायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(इसके बाद नीचे लिखा हुआ शान्तिमन्त्र बोलना चाहिये । मन्त्र बोलते हुये जलधारा छोड़ते रहना चाहिये । और धूप भी खेते रहना चाहिये ।)

शान्तिमन्त्रः ।

ॐ नमः सिद्धेभ्यः । श्रीवीतरागाय नमः । ॐ नमोऽर्हते-भगवते श्रीमते श्रीपार्श्वतीर्थंकराय, द्वादशगणपरिवेष्टिताय, शुक्लध्यानपवित्राय, सर्वज्ञाय, स्वयंभुवे, सिद्धाय, बुद्धाय, परमात्मने, परमसुखाय, त्रैलोक्यमहीव्याप्ताय, अनन्तसंसारचक्रपरिमर्दनाय, अनन्तदर्शनाय, अनन्तवीर्याय, अनन्तसुखाय, त्रैलो-

क्यवशंकराय, सत्यज्ञानाय, सत्यब्रह्मणे, धरणेन्द्रफणामण्डल-मण्डिताय, ऋष्यार्यिकाश्रावकश्राविकाप्रमुखचतुःसंघोपसर्गविनाशाय घातिकर्मविनाशाय, अघातिकर्मविनाशाय। अपवादमस्माकं छिन्द२ भिन्द२। मृत्युं छिन्द२ भिन्द२। अतिकामं छिन्द२ भिन्द २। रतिकामं छिन्द २ भिन्द २। क्रोधं छिन्द २ भिन्द२। अग्निं छिन्द २ भिन्द २। सर्वशत्रुं छिन्द २ भिन्द २। सर्वोपसर्गं छिन्द २ भिन्द २। सर्वविघ्नं छिन्द २ भिन्द २। सर्वभयं छिन्द २ भिन्द २। सर्वराजभयं छिन्द२ भिन्द२। सर्वचोरभयं छिन्द २ भिन्द २। सर्वदुष्टभयं छिन्द २ भिन्द २। सर्वमृगभयं छिन्द २ भिन्द २। सर्वपरमंत्रं छिन्द २ भिन्द २। सर्वमामयभयं छिन्द २ भिन्द २। सर्वशूलभयं छिन्द २ भिन्द २। सर्वक्षयरोगं छिन्द २ भिन्द २। सर्वकुष्टरोगं छिन्द २ भिन्द २। सर्वज्वरमारीं छिन्द २ भिन्द २। सर्वगजमारीं छिन्द २ भिन्द २। सर्वाश्वमारीं छिन्द २ भिन्द २। सर्वगोमारीं छिन्द २ भिन्द २। सर्वमहिषमारीं छिन्द २ भिन्द२। सर्वधान्यमारीं छिन्द २ भिन्द २। सर्ववृक्षमारीं छिन्द २ भिन्द २। सर्वगुल्ममारीं छिन्द २ भिन्द २। सर्व पत्रमारीं छिन्द २ भिन्द २। सर्व पुष्पमारीं छिन्द २ भिन्द २। सर्व फलमारीं छिन्द २ भिन्द २। सर्वराष्ट्रमारीं छिन्द २ भिन्द २ सर्वदेशमारीं छिन्द २ भिन्द २। सर्वविषमारीं छिन्द२ भिन्द २। सर्वक्रूररोगं छिन्द २ भिन्द २ सर्ववेतालशाकिनीभयं छिन्द २ भिन्द २। सर्ववेदनीयं छिन्द २ भिन्द २। सर्वमोहनीयं छिन्द २ भिन्द २। ॐ सुदर्शनमहाराजचक्रविक्रमतेजोबलशौर्य-

शान्ति कुरु कुरु। सर्वजनानन्दनं कुरु कुरु। सर्वभव्यानंदनं कुरु कुरु। सर्व गोकुलानन्दनं कुरु कुरु। सर्वग्रामनगरखेट खर्वटमडम्बपत्तनद्रोणामुखसहानन्दनं कुरु कुरु। सर्व लोकानन्दनं कुरु कुरु। सर्वदेशानन्दनं कुरु कुरु। सर्वयजमानानन्दनं कुरु कुरु। हन हन दह दह पच पच कुट कुट शीघ्रं व्याधिव्यसनवर्जितं अभयक्षेमारोग्यं स्वस्तिरस्तु, शान्तिरस्तु, शिवमस्तु, कुलगोत्रधनं धान्यं सदास्तु। चन्द्रप्रभ, वासुपूज्य, मल्लि, वर्द्धमान, पुष्पदन्त, शीतल, मुनिसुव्रत, नेमिनाथ, पार्श्वनाथाः परमदेवाः सदा शान्ति कुर्वन्तु कुर्वन्तु–इति स्वाहा ।*

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

(इस समय यजमानको चाहिये कि वह अपने व्रतोद्यापनकी खुशीमें शक्ति अनुसार दान करे। इसके बाद पुष्पाञ्जलिक्षेपण करते हुए शान्तिपाठ बोले। फिर कोई उत्तम स्तुति पढ़ता हुआ मण्डलकी तीन प्रदक्षिणाएं करे। फिर विसर्जन पाठ बोलकर उद्यापनकी विधि समाप्त करे। विसर्जनके बाद ९ बार णमोकार मंत्रका जाप करे। इसके बाद यदि मंदिरमें अन्य वेदिकाएं हों तो वहां अर्घ्य चढ़ाकर जिनदेवकी वन्दना करे)।

विधि समाप्त होनेपर गृहस्थाचार्यका फल, वस्त्र आदिसे सन्मान करना चाहिये।

*यह शान्ति मन्त्र दिगम्बरजैनव्रतोद्यापनसंग्रह प्रथम भागसे उद्धृत किया गया है।